जैन आगम और आगमिक व्याख्या साहित्य : एक अध्ययन

- डॉ. सुदर्शनलाल जैन *

भगवान् महावीर (ई.पू. छठी शताब्दी) की अर्थरूप वाणी से उपदिष्ट सिद्धान्तों के प्रतिपादक प्रामाणिक प्राचीन ग्रन्थों को जैनागम के नाम से जाना जाता है। सिद्धान्तविषयक सन्देह होने पर सन्देह-निवारणार्थ इन्हें आगम प्रभाव माना जाता है। गणधर या श्रुतज्ञ ऋषियों के द्वारा प्रणीत होने से "आर्षग्रन्थ" तथा श्रुत परम्परा से प्राप्त होने के कारण "श्रुतग्रन्थ" के रूप में भी ये जाने जाते हैं।[1] इन्हें प्रमुख रूप से दो भागों में विभक्त किया जाता है -- 1. अंग प्रविष्ट (अंग) और 2. अंग बाह्य।

अंग ग्रन्थ वे है जो भगवान् महावीर के साक्षात शिष्यों (गणधरों) के द्वारा रचित हैं तथा अंगबाह्य ग्रन्थ वे हैं जो उत्तरवर्ती श्रुतज्ञ आचार्यों के द्वारा रचित हैं। भगवान महावीर के साक्षात् शिष्यों के द्वारा रचित होने से अंग ग्रन्थ सर्वप्रधान हैं। इन्हें बौद्धों के "त्रिपिटक" की तरह "गणिपिटक"[2] तथा ब्राह्मणों के वेदों की तरह "वेद"[3] भी कहा गया है। इनकी संख्या बारह नियत होने से इन्हें "द्वादशांग"[4] के नाम से भी जाना जाता है। इस तरह अंग और अंगबाह्य सभी ग्रन्थ अर्थरूप से महावीर प्रणीत हैं तथा शब्दरूप से गणधर प्रणीत या तदुत्तरवर्ती श्रुतज्ञ आचार्यों के द्वारा प्रणीत है।[5]

दिगम्बर परम्परा के अनुसार वीरनिर्वाण सं.683 तक श्रुत परम्परा चली जो क्रमशः क्षीण होती गई। आगमों को लिपिबद्ध करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया, जिससे सभी (12 अंग तथा 14 अंगबाह्य) आगम ग्रन्थ लुप्त हो गये। इतना विशेष है कि वे मूल आगमों के नष्ट हो जाने पर भी दृष्टिवाद नामक बारहवें अंग ग्रन्थान्तर्गत पूर्वों के अंशांश ज्ञाताओं द्वारा (वीरनिर्वाण १०वीं शताब्दी में) रचित षट्खण्डागम[6] और कषायपाहुड[7] को तथा वीरनिर्वाण की 14वीं शताब्दी में रचित इनकी क्रमशः धवला और जयधवला टीकाओं को आगम के रूप में मानते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थों को भी आगम के रूप में स्वीकार करते हैं।

श्वेताम्बर परम्परानुसार देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण की अन्तिम वलभीवाचना (वीरनिर्वाणसं. 980 के करीब) के समय स्मृति-परम्परा से प्राप्त आगम ग्रन्थों को संकलित करके लिपिबद्ध किया गया। दृष्टिवाद नामक 12वाँ अंग ग्रन्थ उस समय किसी को याद नहीं था जिससे उसका संकलन नहीं किया जा सका। फलतः उसका लोप स्वीकार कर लिया गया। इस तरह अंगों की संख्या घटकर 11 रह गई।

अंगबाह्य आगम कितने हैं ? इस विषय में मतभेद है --

1. **दिगम्बर परम्परा** -- 14 अंगबाह्य ग्रन्थ हैं। जैसे -- 1. सामायिक, 2. चतुर्विंशतिस्तव, 3. वन्दना, 4. प्रतिक्रमण, 5. वैनयिक, 6. कृतिकर्म, 7. दशवैकालिक, 8. उत्तराध्ययन, 9. कल्पव्यवहार, 10. कल्पाकल्प, 11. महाकल्प, 12. पुण्डरीक, 13. महापुण्डरीक और 14. निषिद्धिका। श्वेताम्बर परम्परानुसार इन 14 अंगबाह्य के भेदों में प्रथम 6 भेद छह आवश्यक रूप हैं, दशवैकालिक और उत्तराध्ययन का मूलसूत्रों में समावेश है, शेष 6 भेदों का अन्तर्भाव कल्प, व्यवहार और निशीथ नामक छेदसूत्रों में है।

2. **स्थानकवासी श्वेताम्बर परम्परा** -- 21 अंगबाह्य ग्रन्थ हैं। जैसे -- 12 उपांग, 4 मूलसूत्र (उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी, अनुयोगद्वार), 4 छेदसूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार और निशीथ) तथा 1 आवश्यक।

3. **मूर्तिपूजक श्वेताम्बर परम्परा** -- 34 अंगबाह्य ग्रन्थ हैं। जैसे -- 12 उपांग, 5 छेदसूत्र (पंचकल्प को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोड़कर), 5 मूलसूत्र (उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आवश्यकनन्दि और अनुयोगद्वार), 8 अन्य ग्रन्थ (कल्प, जीतकल्प, यतिजीतकल्प, श्राद्धजीतकल्प, पाक्षिक, श्रामणा, वंदि और ऋषिभाषित), 30 प्रकीर्णक, 12 निर्युक्तियाँ और विशेषावश्यक महाभाष्य।

इस तरह श्वेताम्बर परम्परा में 11 अंगों को जोड़कर स्थानकवासी 32, मूर्तिपूजक 45 तथा अन्य मूर्तिपूजक 84 आगमों की मान्यता है। इनकी रचना अर्धमागधी प्राकृत भाषा में की गई है जबकि दिगम्बरों के आगम ग्रन्थ जैन शौरसेनी प्राकृत भाषा में लिखे गये हैं।

आगम-विभाजन के प्रकार

अंग, उपांग आदि के रूप में आगमों का स्पष्ट विभाजन सर्वप्रथम भावप्रभसूरि (18वीं शताब्दी) द्वारा विरचित जैनधर्मवरस्तोत्र (श्लोक 30) की स्वोपज्ञ टीका में मिलता है। प्राचीन परम्परा में आगमों को प्रथमतः आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त के रूप में विभक्त किया गया है। इसके पश्चात् आवश्यकव्यतिरिक्त के कालिक और उत्कालिक ये दो भेद किये गये हैं। जिनका अध्ययन किसी निश्चित समय (दिन एवं रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहर) में किया जाता है उन्हें कालिक और जिनका अध्ययन तदतिरिक्त काल में किया जाता है उन्हें उत्कालिक कहते हैं। उत्तराध्ययन आदि कालिक श्रुत हैं, तथा दशवैकालिक आदि उत्कालिक। कालिक और उत्कालिक का यह भेद केवल अंगबाह्य ग्रन्थों में था परन्तु परवर्तीकाल में श्वेताम्बरों ने दृष्टिवाद को छोड़कर शेष 11 अङअंग को कालिक में गिनाया है। दृष्टिवाद को लुप्त मान लेने से उसको न तो कालिक बतलाया है और न उत्कालिक। आवश्यक में पहले सामायिक आदि छः ग्रन्थ थे, जिनका आज एक आवश्यकसूत्र में समावेश है।

आगम ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

अंग ग्रन्थ

1. **आचारांग** -- इसमें विशेष रूप से साधुओं के आचार का प्रतिपादन किया गया है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध का नाम ब्रह्मचर्य है जिसका अर्थ है "संयम" यह श्रुतस्कन्ध द्वितीय श्रुतस्कन्ध से प्राचीन है। इसमें शस्त्रपरिज्ञा आदि 9 अध्ययन है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध में चार चूलायें हैं जिनका 16 अध्ययनों में विभाजन है। इसकी पंचम चूला "निशीथ" आज आचारांग से पृथक् ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है। प्रथम श्रुतस्कन्ध के "महापरिज्ञा" नामक समग्र अध्ययन का लोप हो गया है, परन्तु उस पर लिखी गई निर्युक्ति उपलब्ध है।

2. **सूत्रकृतांग** -- इसमें धार्मिक उपदेशों के साथ जैनेतर मतावलम्बियों के सिद्धान्तों का खण्डन है। इसके भी दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध में 16 और द्वितीय श्रुतस्कन्ध में 7 अध्याय है। प्रथम श्रुतस्कन्ध प्राचीन है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध प्रथम श्रुतस्कन्ध के परिशिष्ट के समान है। भारत के धार्मिक सम्प्रदायों का ज्ञान कराने की दृष्टि से दोनों श्रुतस्कन्ध महत्त्वपूर्ण हैं।

3. **स्थानांग** -- इसमें एक स्थानिक, द्वि-स्थानिक आदि क्रम से 10 स्थानिक या अध्ययन हैं जिनमें एक से लेकर 10 तक की संख्या के अर्थों का कथन है। इसमें वस्तुओं का निरूपण संख्या की दृष्टि से किया जाने से यह संग्रह प्रधान कोश शैली का ग्रन्थ है।

4. **समवायांग** -- यह ग्रन्थ भी स्थानांग की शैली में लिखा गया कोश ग्रन्थ है। इसमें 1 से वृद्धि करते हुए 100 समवायों का वर्णन है। एक प्रकीर्ण समवाय है, जिसमें 100 से आगे की संख्याओं का समवाय बतलाया गया है। अन्त में 12 अंग ग्रन्थों का परिचय भी है। दिगम्बरों के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि स्थानांग और समवायांग की शैली में कुछ अन्तर था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

5. **व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती)** -- व्याख्यात्मक कथन होने से इसे व्याख्याप्रज्ञप्ति कहते हैं। पूज्य और विशाल होने से इसे श्वेताम्बर "भगवती" भी कहते हैं। यह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। प्रारम्भ के 20 शतक प्राचीन हैं।

6. **ज्ञाताधर्मकथा** -- इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध में 19 अध्ययन है और द्वितीय श्रुतस्कन्ध में धर्मकथाओं के 10 वर्ग हैं। इस कथा ग्रन्थ की मुख्य और अवान्तर कथाओं में आई हुई अनेक घटनाओं से तथा विविध प्रकार के वर्णनों से तत्कालीन इतिहास और संस्कृति की जानकारी मिलती है।

7. **उपासकदशा** -- इसमें आनन्द आदि 10 उपासकों की कथायें हैं। प्रायः सभी कथायें एक जैसी हैं।

8. **अन्तकृद्दशा** -- "अन्तकृत" शब्द का अर्थ है -- संसार का अन्त करने वाले। इसमें ऐसे ही अन्तकृतों की कथायें हैं। इसमें 8 वर्ग हैं जिनमें प्रथम 5 वर्ग कृष्ण और वासुदेव से सम्बन्धित हैं, षष्ठ और सप्तम वर्ग भगवान महावीर के शिष्यों से सम्बन्धित है तथा अष्टम वर्ग राजा श्रेणिक की काली आदि 10 भार्याओं की कथा से सम्बन्धित है।

9. **अनुत्तरौपपातिकदशा** -- (विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि के वैमानिक देव अनुत्तर अर्थात् श्रेष्ठ कहलाते हैं) जो उपपाद जन्म से अनुत्तरों में उत्पन्न होते हैं, उन्हें अनुत्तरौपपातिक कहते हैं। ऐसे व्यक्तियों का इसमें वर्णन हैं। इसमें तीन वर्ग हैं जिनमें 33 अध्ययन हैं।

10. **प्रश्नव्याकरण** -- इसमें प्रश्नों के उत्तर (व्याकरण) नहीं है अपितु पाँच आस्रवद्वार (हिंसादि) और पाँच संवरद्वार (अहिंसादि) रूप 10 अध्ययन हैं।

11. **विपाकसूत्र** -- विपाक का अर्थ है -- "कर्मफल"। पापरूप और पुण्यरूप कर्मों के फलों का कथन है। दो श्रुतस्कन्ध है जिनमें 10+10 अध्ययन है।

12. **दृष्टिवाद** -- यह ग्रन्थ लुप्त हो गया है। इसमें स्वसमय और परसमय की सभी प्ररूपणायें थीं। यह 5 भागों में विभक्त था -- परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका। यह विशालकाय ग्रन्थ रहा है। पूर्वों के कारण इसका अधिक महत्त्व था। दिगम्बर आगम ग्रन्थों (षट्खण्डागम और कषायपाहुड) का उद्गम स्रोत यही ग्रन्थ माना गया है। 11 अङअंग से पृथक् इसका उल्लेख दोनों सम्प्रदायों में मिलता है।

अंगबाह्य -- इन्हें पहले प्रकीर्णक कहा जाता था। निरयावलिया में इन्हें उपांग भी कहा गया है परन्तु अब ये दोनों नाम दूसरे अर्थ में रूढ़ हो गये हैं।

उपांग ग्रन्थ -- इनकी रचना स्थविरों ने की है। इनका अङअंग के साथ सम्बन्ध नहीं है। ये स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। उपांग शब्द का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में नहीं है।

1. **औपपातिक** -- इसमें 43 सूत्र है। चम्पानगरी के वर्णन से ग्रन्थ का प्रारम्भ होता है। इसका सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक दृष्टि से महत्त्व है। इसमें मनुष्यों के भव सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर देते हुए भगवान महावीर ने अनेक विषयों का प्रतिपादन किया है।

2. **राजप्रश्नीय** -- इसमें 217 सूत्र है और दो भागों में विभक्त है। इसका प्रारम्भ आमलकल्पा नगरी के वर्णन से होता है। इसमें राजा परासी (प्रदेशी) द्वारा किये गये प्रश्नों का समाधान केशि मुनि के द्वारा किया गया है।

3. **जीवाजीवाभिगम (जीवाभिगम)** -- इसमें 9 प्रतिपत्ति (प्रकरण) और 272 सूत्र है जिनमें जीव और अजीव के भेद-प्रभेदों का वर्णन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4. **प्रज्ञापना** -- इसमें 349 सूत्र है जिनमें प्रज्ञापना, स्थान आदि 36 पदों का वर्णन है। जैसे अङअंग में भगवतीसूत्र बड़ा है वैसे ही उपांगों में यह बड़ा है।

5. **सूर्यप्रज्ञप्ति** -- इसमें सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की मुनियों का 108 सूत्रों में (20 पाहुडों में) विस्तार से वर्णन है।

6. **जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति** -- इसमें 7 वक्षस्कार (परिच्छेद) है जनमें 176 सूत्र है। तीसरे वक्षस्कार में भारतवर्ष और राजा भरत का वर्णन है। जम्बूद्वीप की जानकारी के लिए महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

7. **चन्द्रप्रज्ञप्ति** -- इसकी विषयवस्तु सूर्यप्रज्ञप्ति के समान है। इसमें 20 प्राभृत है।

8. **निरयावलिया** -- इसमें 5 उपांग समाविष्ट है -- 1. निरयावलिया अथवा कल्पिका, 2. कल्पावतंसिका, 3. पुष्पिका, 4. पुष्पचूलिका और 5. वृष्णिदशा। निरयावलिया (कल्पिका) में 10 अध्ययन है जिनमें राजा कूणिक आदि की कथायें हैं। मगध का इतिहास जानने के लिए यह बहुत उपयोगी है।

9. **कल्पावतंसिका** -- इसमें 10 अध्ययन हैं जिनमें राजा श्रेणिक के 10 पौत्रों के सत्कर्म की कथायें हैं।

10. **पुष्पिका** -- इसमें 10 अध्ययन है जिनमें चन्द्र, सूर्य और शुक्र के वर्णन के साथ अन्य कथायें हैं।

11. **पुष्पचूलिका** -- इसके 10 अध्ययनों में श्री, ही आदि की कथायें हैं।

12. **वृष्णिदशा** -- इसमें 12 अध्ययन है जिनमें द्वारका के राजा कृष्ण वसुदेव के वर्णन के साथ वृष्णिवंशीय 12 राजकुमारों की कथायें हैं।

मूलसूत्र -- साधु जीवन के मूलभूत नियमों का उपदेश होने से ये मूलसूत्र कहलाते हैं। "मूलसूत्र" नाम का भी उल्लेख प्राचीन आगमों में नहीं मिलता। मूलसूत्र नामकरण के विषय में, इनकी संख्या के विषय में तथा मूलसूत्रान्तर्गत आगम नामों के विषय में मतभेद है। उत्तराध्ययन और दशवैकालिक को सभी एक स्वर से मूलसूत्र मानते हैं। अन्य नामों में आवश्यक, नन्दि और अनुयोगद्वार प्रमुख हैं। पिण्डनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्ति और पाक्षिकसूत्र को भी कुछ लोग मूलसूत्रों में गिनते हैं। ऐसा इन ग्रन्थों के महत्त्व के कारण है।

1. **उत्तराध्ययन** -- यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें 36 अध्ययन हैं जिनमें कुछ आख्यानप्रधान हैं, कुछ उपदेशात्मक हैं और कुछ दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादक हैं।

2. **दशवैकालिक** -- यह भी उत्तराध्ययन की तरह प्राचीन और महत्त्वपूर्ण है। इसमें 10 अध्ययन है तथा विकाल (सन्ध्याकाल) में अध्ययन किया जाने के कारण इसका नाम दशवैकालिक है। मुनि का आचार प्रतिपादित करना इसका मुख्य विषय है। इसके रचयिता स्वयम्भव हैं।

3. **आवश्यक** -- इसमें सामायिक आदि 6 नित्यकर्म प्रतिपादक ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

(4 - 6.) **नन्दी और अनुयोगद्वार** -- ये दोनों आगमों के परिशिष्ट जैसे हैं। नन्दी दूष्यगणि के शिष्य देववाचक की और अनुयोगद्वार आर्यरक्षित की रचना है।

(7) **ओघनिर्युक्ति** -- ओघ का अर्थ है सामान्य। इसमें साधु के सामान्य आचार-विचार का दृष्टान्त शैली में वर्णन है। यह भी भद्रबाहु की रचना है।

(8) **पाक्षिकसूत्र** -- यह आवश्यक का अंग है क्योंकि इसमें साधु के पाक्षिक प्रतिक्रमण का वर्णन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छेदसूत्र -- इनमें साधु एवं साध्विनियों के प्रायश्चित्त विधि का वर्णन है। आगमों के प्राचीनतम अंश होने से महत्त्वपूर्ण है। ये संक्षिप्त शैली में लिखे गये हैं। बौद्धों के विनयपिटक से इनकी तुलना की जा सकती है। इनकी संख्या के विषय में मतभेद है। ये संख्या में अधिक से अधिक छः माने गये हैं और कम से कम चार। छेदसूत्र जैन आचार की कुंजी है तथा जैन संस्कृति की अद्वितीय निधि है।

1. **दशाश्रुतस्कन्ध (आचारदशा)** -- इसमें 10 अध्ययन है। मुख्यतया यह गद्य में है। इसके रचयिता आचार्य भद्रबाहु हैं।

2. **बृहत्कल्प (कल्पसूत्र)** -- इसमें 6 उद्देशक हैं जो गद्य में लिखे गये हैं।

3. **व्यवहार** -- इसमें 20 उद्देशक हैं जिसमें करीब 1500 सूत्र हैं। छेदसूत्रों में इसका सबसे अधिक महत्त्व है।

5. **महानिशीथ** -- इसमें 6 अध्ययन एवं दो चूलायें हैं। भाषा और विषय की दृष्टि से यह प्राचीन नहीं लगता है। वस्तुतः महानिशीथ नष्ट हो गया है। उपलब्ध महानिशीथ (जो निशीथ से छोटा है) हरिभद्रसूरि का उद्धार है।

6. **जीतकल्प** -- इसके रचयिता भाष्यकार जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण हैं। इसमें 103 गाथायें हैं। कुछ विद्वान इसके स्थान पर पंचकल्प नाम देते हैं।

प्रकीर्णक -- प्रकीर्णक का अर्थ है विविध। इनकी संख्या हजारों में है, परन्तु वल्लभीवाचना में 10 प्रकीर्णकों को मान्यता दी गई थी। वर्तमान में मुख्य रूप से 10 प्रकीर्णक माने जाते हैं। यद्यपि इनके नामों में एकरूपता नहीं है फिर भी निम्न 10 प्रकीर्णक प्रमुख हैं जो मूर्तिपूजकों को विशेष रूप से मान्य है --

1. **चतुःशरण (कुशलानुबंधि अययन)** -- इसमें 63 गाथायें हैं। इसमें अरहंत, सिद्ध साधु और केवलिकथित धर्म को शरण माना गया है। अतः इसे चतुःशरण कहते हैं।

2. **आतुरप्रत्याख्यान (अन्तकाल प्रकीर्णक)** -- इसमें 70 गाथायें तथा कुछ गद्य भाग है। इसमें बालमरण और पण्डितमरण का विवेचन है।

3. **महाप्रत्याख्यान** -- इसमें 142 गाथाओं द्वारा प्रत्याख्यान (त्याग) का वर्णन किया गया है।

4. **भक्तपरिज्ञा** -- इसमें 172 गाथाओं द्वारा भक्तपरिज्ञा नामक मरण का वर्णन किया गया है।

5. **तन्दुलवैचारिक** -- इसमें 139 गाथायें तथा कुछ सूत्र है। इसमें नारी जाति के विषय में तथा गर्भ के विषय में वर्णन है। 100 वर्ष की आयु वाला मनुष्य कितना तन्दुल (चावल) खाता है, इसका विचार होने से इसका नाम तन्दुलवैचारिक पड़ गया है।

6. **संस्तारक** -- इसमें 123 गाथायें हैं जिनमें मृत्यु के समय अपनाने योग्य संस्तारक (तृण आदि की शय्या) का महत्त्व वर्णित है।

7. **गच्छाचार** -- इसमें 137 गाथायें हैं जिनमें गच्छ (समूह) में रहने वाले साधु-साध्वियों के आचार का वर्णन है। यह महानिशीथ, कल्प (बृहत्कल्प) तथा व्यवहारसूत्र के आधार पर लिखा गया है।

8. **गणिविद्या** -- इसमें 82 गाथायें हैं जिनमें ज्योतिष, विद्या का वर्णन है।

9. **देवेन्द्रस्तव** -- इसमें 307 गाथाओं द्वारा 32 देवेन्द्रों का वर्णन किया गया है।

10. **मरणसमाधि (मरणविभक्ति)** -- इसमें 663 गाथायें हैं। इसमें समाधिमरण का 14 द्वारों में विवेचन किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट :-- श्वेताम्बर मूर्तिपूजक गच्छाचार और मरणसमाधि के स्थान पर निम्न दो प्रकीर्णक मानते हैं--

11. **चन्द्रवेध्यक** -- इसमें 175 गाथायें हैं। चन्द्रवेध्यक का अर्थ है -- राधावेद। इसमें "मृत्यु के समय थोड़ा भी प्रमाद नहीं करना चाहिए" इसका वर्णन है।

12. **वीरस्तव** -- इसमें 43 गाथाओं में भगवान महावीर की स्तुति है। कुछ अन्य प्रकीर्णकों के नाम हैं -- तीर्थोद्गालिक, अजीवकल्प, आराधनापताका, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करण्डक, अंग विद्या, पिण्डविशुद्धि, तिथिप्रकीर्णक, सारावलि, पर्यन्तआराधना, जीवविभक्ति, कवचप्रकरण, योनिप्राभृत आदि।

आगमिक व्याख्या साहित्य

मूल आगम ग्रन्थों के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए व्याख्यात्मक साहित्य लिखा गया। इनमें ग्रन्थकार ग्रन्थ के गूढ़ार्थ को प्रकाशित करने के साथ-साथ अपनी मान्यता की भी प्रतिस्थापना करते हैं। कई व्याख्या ग्रन्थ तो इतने प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण हो गये कि उन्हें मूल आगम ग्रन्थों में मिला लिया गया। इससे व्याख्या साहित्य का महत्त्व प्रकट होता है। भारतीय संस्कृति, कला, पुरातत्व, दर्शन, इतिहास, साहित्य आदि कई दृष्टियों से इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस व्याख्या साहित्य को 5 भागों में विभक्त किया जाता है --

1. निर्युक्ति (निज्जुति) -- प्राकृत भाषा में पद्यबद्ध व्याख्या।
2. भाष्य (भास) -- प्राकृत भाषा में पद्यबद्ध व्याख्या।
3. चूर्णि (चुण्णि) -- संस्कृत-प्राकृत मिश्रित गद्यात्मक व्याख्या।
4. संस्कृत टीकायें।
5. लोकभाषा में रचित टीकायें।

इनके अतिरिक्त आगमों के विषयों का संक्षेप में परिचय देने वाली संग्रहणियाँ भी बहुत प्राचीन हैं। पंचकल्पमहाभाष्य के उल्लेखानुसार संग्रहणियों की रचना आर्य कालक ने की है। पाक्षिकसूत्र में भी संग्रहणी का उल्लेख मिलता है।

निर्युक्तियाँ

इनमें प्रत्येक पद का व्याख्यान न करके विशेष रूप से पारिभाषिक शब्दों का व्याख्यान है। इनकी व्याख्यान शैली निक्षेप पद्धति के रूप में प्रसिद्ध है। इस शैली में किसी एक पद के कई सम्भावित अर्थ करने के बाद उनमें से अप्रस्तुत अर्थ का निषेध करके प्रस्तुत (प्रासंगिक) अर्थ का ग्रहण किया जाता है। अतः शब्दार्थ निर्णय (निश्चय) का नाम निर्युक्ति है। आवश्यकनिर्युक्ति में आचार्य भद्रबाहु (गाथा 88) ने स्पष्ट लिखा है कि एक शब्द के कई अर्थ होते हैं, उनमें से कौन सा अर्थ किस प्रसंग के लिए उपयुक्त है, भगवान महावीर के उपदेशकाल में किस शब्द से कौन सा अर्थ सम्बद्ध रहा है, आदि बातों को दृष्टि में रखकर सम्यक् अर्थ निर्णय तथा मूलसूत्र के शब्दों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना निर्युक्ति का उद्देश्य है। इस तरह पारिभाषिक शब्दों की सुस्पष्ट व्याख्या करना निर्युक्तियों का प्रयोजन है। इतिहास, दर्शन, संस्कृति, भूगोल, भाषाविज्ञान आदि दृष्टियों से इनका अध्ययन कई महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को देने वाला है। ये पद्यात्मक हैं तथा प्राकृत भाषा में लिखी गई हैं। इनका रचनाकाल वि.सं. 500-600 के मध्य माना जाता है। इनके प्रसिद्ध रचयिता हैं -- आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय)। इन्होंने निम्न दशनिर्युक्तियों को लिखा है--

1. **आवश्यकनिर्युक्ति** -- यह आचार्य भद्रबाहु की प्रथम कृति है। आवश्यकसूत्र की यह निर्युक्ति अन्य निर्युक्तियों की अपेक्षा अति महत्त्वपूर्ण है। इसका प्रारम्भिक उपोद्घात सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है। इस निर्युक्ति पर जिनभद्र,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनदासगणि आदि ने विविध टीकायें लिखीं हैं। भिन्न-भिन्न व्याख्याओं में इसकी गाथा संख्या भिन्न-भिन्न है। माणिक्यशेखर की दीपिकाटीका में इस निर्युक्ति की 1615 गाथायें हैं। कहीं-कहीं जिनभद्रकृत विशेषावश्यकभाष्य की गाथायें भी निर्युक्ति गाथाओं में मिली हुई हैं।

2. **दशवैकालिकनिर्युक्ति** -- इसमें पुष्प, धान्य, रत्न, चतुष्पद आदि पदों के व्याख्यान से विविध विषयों की सम्यक् जानकारी मिलती है।

3. **उत्तराध्ययननिर्युक्ति** -- इसमें विविध पदों की निर्युक्ति के प्रसंग में अंग की व्याख्या करते हुए गंधाग, औषधांग, मद्यांग, शरीरांग, युद्धांग आदि के भेद-प्रभेदों का वर्णन है। सत्रह प्रकार के मरण की भी व्याख्या है।

4. **आचारांगनिर्युक्ति** -- इसके प्रारम्भ में आचारांग का अङअंग में प्रथम स्थान माने जाने का हेतु बतलाया गया है। अन्त में "आचारांग की पंचम चूला निशीथ की निर्युक्ति बाद में करूँगा" कहकर उसे छोड़ दिया है।

5. **सूत्रकृतांगनिर्युक्ति** -- इसमें सूत्रकृतांग शब्द का विवेचन करते हुए गाथा, पुरुष, समाधि, आहार आदि विविध पदों की व्याख्या की गई है।

6. **दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति** -- इसमें समाधि, स्थान, चित्त, पर्यूषणा, मोह आदि पदों की निर्युक्तियाँ हैं।

7. **बृहत्कल्पनिर्युक्ति** -- इसमें भाष्य गाथायें मिश्रित हो गई हैं। इसमें ताल, नगर, राजधानी, उपाश्रय, चर्म, मैथुन आदि की महत्त्वपूर्ण निर्युक्तियाँ हैं। बीच-बीच में दृष्टान्तरूप कथानक भी हैं।

8. **व्यवहारनिर्युक्ति** -- इसमें भी भाष्य गाथायें मिश्रित हो गई हैं। यह बृहत्कल्प की पूरक रूप निर्युक्ति है। इसमें साधुओं के आचार-विचार से सम्बन्धित पदों की संक्षिप्त विवेचना है।

9. **सूर्यप्रज्ञप्तिनिर्युक्ति** -- अनुपलब्ध है।

10. **ऋषिभाषितनिर्युक्ति** -- अनुपलब्ध है।

ओघनिर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति, पंचकल्पनिर्युक्ति और निशीथनिर्युक्ति क्रमशः दशवैकालिकनिर्युक्ति, बृहत्कल्पनिर्युक्ति और आचारांगनिर्युक्ति की पूरक हैं। संसक्तनिर्युक्ति परवर्ती किसी अन्य आचार्य की रचना है। गोविन्दाचार्य की गोविन्दनिर्युक्ति अनुपलब्ध है। ओघनिर्युक्ति और पिण्डनिर्युक्ति को मूलसूत्रों में भी गिनाया जाता है।

भाष्य -- निर्युक्तियों के संक्षिप्त तथा गूढ़ होने से उनका विस्तार से विचार करने हेतु तथा गूढ़ार्थ के रहस्य को प्रकट करने के लिए भाष्य लिखे गए। जिस तरह प्रत्येक आगम ग्रन्थ पर निर्युक्ति नहीं लिखी जा सकी, उसी प्रकार प्रत्येक निर्युक्ति पर भाष्य भी नहीं लिखे जा सके। कुछ भाष्य तो निर्युक्तियों पर है परन्तु कुछ भाष्य मूलसूत्रों पर भी है। इस भाष्य साहित्य का कई दृष्टियों से अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुछ भाष्य बहुत विस्तृत है तथा कुछ भाष्य बहुत संक्षिप्त हैं। ये भाष्य भी निर्युक्तियों की तरह पद्यात्मक शैली में प्राकृत भाषा में लिखे गए हैं जिससे कहीं-कहीं भाष्य गाथायें निर्युक्ति गाथाओं में मिल गई हैं। भाष्यकार के रूप में जिनभद्रगणि और संघदासगणि प्रसिद्ध हैं। विशेषावश्यकभाष्य और जीतकल्पभाष्य संघदासगणि की रचनायें हैं। सम्भवतः संघदासगणि आ. जिनभद्र के पूर्ववर्ती हैं। अन्य भाष्यकारों की स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। प्रमुख 10 आगम ग्रन्थों के भाष्य निम्न हैं--

1. **आवश्यकभाष्य** -- आवश्यकसूत्र पर तीन भाष्य लिखे गए हैं -- मूलभाष्य, भाष्य और विशेषावश्यकभाष्य। प्रथम दो भाष्य अत्यन्त संक्षिप्त हैं और उनकी गाथायें विशेषावश्यकभाष्य में मिल गई हैं। यह विशेषावश्यकभाष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूरे आवश्यकसूत्र पर न होकर केवल प्रथम सामायिक आवश्यक पर है। इसमें 3603 गाथायें हैं। जैनागम के प्रायः सभी विषयों की चर्चा इस भाष्य में है। इसमें जैन सिद्धान्तों का विवेचन दार्शनिक पद्धति से किया गया है जिससे जैनेतर दार्शनिकों की भी मान्यताओं का ज्ञान इससे होता है। दिगम्बरों की केवलदर्शन और केवलज्ञान के युगपद् उपयोग की मान्यता का इसमें खण्डन किया गया है।

2. **दशवैकालिकभाष्य** -- इसमें 63 गाथायें हैं।

3. **उत्तराध्ययनभाष्य** -- इसमें 45 गाथायें हैं।

4. **बृहत्कल्पभाष्य** -- बृहत्कल्प पर दो भाष्य है -- लघु और बृहत्। लघुभाष्य में 6400 गाथायें हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति की दृष्टि से इस लघुभाष्य का अतिमहत्त्व है। जैनश्रमणों के आचार का सूक्ष्म और तर्कसंगत विवेचन इसकी विशेषता है। बृहत्-भाष्य पूर्ण उपलब्ध नहीं है।

5. **पंचकल्पमहाभाष्य** -- इसमें 2574 गाथायें हैं। यह पाँच कल्पों में विभक्त पंचकल्पनिर्युक्ति का व्याख्यान रूप है। प्रवज्या के योग्य और अयोग्य व्यक्तियों का, साधुओं के विचरण के योग्य आर्य क्षेत्र का भी इसमें वर्णन है।

6. **व्यवहारभाष्य** -- इसमें 4629 गाथायें हैं जिनमें साधु-साध्वियों के आचार का वर्णन है।

7. **निशीथभाष्य** -- इसमें लगभग 6500 गाथायें हैं।

8. **जीतकल्पभाष्य** -- इसमें 2606 गाथायें हैं। इसमें बृहत्कल्प, लघुभाष्य आदि की कई गाथायें अक्षरशः उद्धृत हैं। इसमें प्रायश्चित्त के विधि-विधानों का प्रमुख रूप से विवेचन है।

9. **ओघनिर्युक्तिभाष्य** -- इस पर दो भाष्य है -- लघु एवं बृहत्। दोनों में क्रमशः 322 और 2517 गाथायें हैं। दोनों में ओघ, पिण्ड, व्रतादि का विचार है।

10. **पिण्डनिर्युक्तिभाष्य** -- इसमें पिण्ड, आधाकर्म आदि का 46 गाथाओं में वर्णन है।

चूर्णियाँ

जैनागमों पर प्राकृत अथवा संस्कृत मिश्रित प्राकृत में गद्यात्मक शैली में जो व्याख्यायें लिखीं गईं उन्हें चूर्णियाँ कहते हैं। इस तरह की चूर्णियाँ आगमेतर साहित्य पर भी लिखी गई हैं। चूर्णिकार जिनदासगणिमहत्तर (वि.सं. 650-750) परम्परा से निशीथविशेषचूर्णि, नन्दीचूर्णि, अनुयोगद्वारचूर्णि, आवश्यकचूर्णि, दशवैकालिकचूर्णि, उत्तराध्ययनचूर्णि तथा सूत्रकृतांगचूर्णि के कर्ता माने जाते हैं। इनके जीवन से सम्बन्धित विशेष जानकारी नहीं मिलती है। जैनागमों पर लिखीं गई प्रमुख चूर्णियाँ निम्न हैं -- 1. आचारांगचूर्णि (निर्युक्त्यनुसारी), 2. सूत्रकृतांगचूर्णि (निर्युक्त्यनुसारी संस्कृत प्रयोग) अपेक्षाकृत अधिक है, 3. व्याख्याप्रज्ञप्ति या भगवतीचूर्णि, 4. जीवाभिगमचूर्णि, 5. निशीथचूर्णि (इस पर दो चूर्णियाँ हैं परन्तु उपलब्ध एक ही है, निशीथविशेषचूर्णि कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है), 6. महानिशीथचूर्णि, 7. व्यवहारचूर्णि, 8. दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि, 9. बृहत्कल्पचूर्णि (दो चूर्णियाँ हैं), 10. पचकल्पचूर्णि, 11. ओघनिर्युक्तिचूर्णि, 12. जीतकल्पचूर्णि (इस पर दो चूर्णियाँ हैं परन्तु उपलब्ध एक ही है। उपलब्ध चूर्णि के कर्त्ता सिद्धसेनसूरि हैं। यह सम्पूर्ण प्राकृत में है), 13. उत्तराध्ययनचूर्णि, 14. आवश्यकचूर्णि (इसमें ऐतिहासिक व्यक्तियों के कथानकों का संग्रह है), 15. दशवैकालिकचूर्णि (इस पर दो चूर्णियाँ हैं। एक अगस्त्यसिंह की है और दूसरी जिनदासकृत है), 17. नन्दीचूर्णि (यह संक्षिप्त और प्राकृत भाषा प्रधान है। मुख्यरूप से ज्ञान-स्वरूप की चर्चा है), 18. अनुयोगद्वारचूर्णि (इस पर दो चूर्णियाँ हैं। एक के कर्ता भाष्यकार जिनभद्रगणि हैं और दूसरे के चूर्णिकार जिनदासगणि), 19. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिचूर्णि आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत टीकायें

संस्कृत के प्रभाव को देखते हुए जैनाचार्यों ने जैनागमों पर कई नामों से संस्कृत व्याख्यायें लिखीं हैं। इनका भी आगमिक व्याख्या साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत व्याख्याकारों ने निर्युक्तियों, भाष्यों और चूर्णियों का उपयोग करते हुए नये-नये तर्कों के द्वारा सिद्धान्त पक्ष की पुष्टि की है। जैनागम पर सबसे प्राचीन संस्कृत टीका आचार्य जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण कृत विशेषावश्यकभाष्य की स्वोपज्ञवृत्ति है। टीकाकारों में हरिभद्रसूरि, शीलांकसूरि, वादिवेतालशान्तिसूरि, अभयदेवसूरि, मलयगिरि, मलधारी हेमचन्द्र आदि प्रसिद्ध हैं। कुछ अज्ञात टीकाकार भी हैं। ज्ञातनामा टीकाकार भी बहुत हैं।

लोकभाषारचित टीकायें -- हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी आदि लोक-भाषाओं में भी विपुल टीकायें लिखी गई हैं। समीक्षात्मक शोध-प्रबन्धों के द्वारा भी आगमों के रहस्य को इन लोक भाषाओं द्वारा उद्घाटित किया गया है। इनका भी कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इस तरह जैनागम और उसका व्याख्या साहित्य न केवल जैनों की अमूल्य निधि है अपितु भारतीय सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, दर्शन आदि की भी अमूल्य निधि है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी इनका बड़ा महत्त्व है। यदि आज यह साहित्य हमारे पास उपलब्ध न होता तो हम अन्धकार में पड़े रहते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 1, पृ. 31.
2. समवायाङ्गसूत्र, भाग 1, पृ. 136.
3. प्राकृत साहित्य बृहद् इतिहास, भाग 1, पृ. 44.
4. वही,
5. नन्दीसूत्र 43; तत्वार्थवार्तिक 1,20,13; आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा 92.
6. **षट्खण्डागम** -- यह 16 भागों में प्रकाशित है। इसके जीवट्ठाण, खुद्दाबंध, बंधसामित्तविचय, वेदना, वग्गणा और महाबन्ध ये 6 खण्ड हैं, अतः इसे षट्खण्डागम कहते हैं। इसका उद्गम स्रोत दृष्टिवाद के द्वितीय पूर्व आग्रायणीय के चयनलब्धि नामक 5वें अधिकार के चौथे पाहुड कर्मप्रकृति को माना जाता है। लेखक हैं आचार्य धरसेन। इस पर आचार्य वीरसेन ने धवलाटीका लिखी है। महाबन्ध नामक छठा खण्ड अपनी विशालता के कारण पृथक् ग्रन्थ के रूप में माना जाता है।
7. **कसायपाहुड** -- यह 16 भागों में प्रकाशित है। इसमें राग (पेज्ज) और द्वेष का निरूपण है। रचनाकार हैं आचार्य गुणधर जो दृष्टिवाद के 5वें ज्ञानप्रवाद पूर्व के 10वें वस्तु के 3सरे कषायप्राभृत के पारगामी थे। यही अंश इसका उद्गम स्रोत है। इस पर जयधवलाटीका आचार्य वीरसेन और जिनसेन ने लिखी है। आचार्य यतिवृषभ ने चूर्णि लिखी है।

---

* रीडर, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org